'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १४७ | वाराणसी, मंगलवार, २२ दिसम्बर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

कार्यकर्ता-सम्मेलन में

आदिपुर (कच्छ) ३०-११-'५८

कार्यकर्ताओं के लिए तीन सुझाव

भूदान की कल्पना निकली तो मैं अकेला ही था। मेरे साथ कुछ साथी थे, लेकिन वैसे मैं अकेला ही था। मेरे हाथ में न सत्ता थी और न संस्था। फिर भी सात-साढ़े सात साल तक यात्रा सतत जारी रही। क्योंकि इतनी बलवान आकांक्षा थी कि या तो पाँव टूटेगा, तभी यात्रा खंडित होगी, या जब इसका उद्देश्य सफल होगा, तभी यात्रा खंडित होगी। यह मैं अपने बल से नहीं कह रहा हूँ। प्रभु का बल मेरे पीछे है, इसीलिए मैं यह कह सकता हूँ।

कच्छ से कम-से-कम सौ सेवकों की माँग

मेरा कहना यह है कि यहाँ दस लाख सिंधी हैं तो उनमें से दो सौ लोग मुझे सेवा करने के लिए मिलने चाहिए। यहाँ सिर्फ सिंधी नहीं, कच्छी लोग भी हैं। अतः कच्छ से कच्छ की सेवा के लिए १०० लोग निकलने चाहिए। हमें सारे सिंधियों के लिए नहीं, सारे कच्छ के लिए सोचना चाहिए। इस कच्छ में पूरे विश्व का दर्शन होना चाहिए। यदि आप सब प्रेम, हिम्मत, पराक्रम और साहस से काम करेंगे तो यहाँ लक्ष्मी रहेगी और सारे विश्व का दर्शन भी हो सकेगा। यहाँ उत्तम-उत्तम कवि निर्माण होने चाहिए। आपने एक ही कवि दिया है, दुखायलजी। लेकिन अब वह सिर्फ सिंधी का कवि नहीं रहा, सारे भारत का कवि बन गया है। जगह-जगह उसने काम किया है और अपनी कविता से लोगों को आकृष्ट किया है। यहाँ उत्तम साहित्य निर्माण होना चाहिए। उत्तम लिखनेवाले निकलने चाहिए। तभी सारा कच्छ न सिर्फ भारत के लिए, बल्कि सारे विश्व के लिए एक नमूना बन सकेगा। विज्ञान, साहित्य, कला, लक्ष्मी, आत्मज्ञान यहाँ खूब बढ़े। इसके लिए हमें सेवकों की जरूरत है। मैंने सारे गुजरात प्रान्त से साढ़े तीन हजार सेवकों की माँग की है। इस कच्छ की सेवा के लिए दो सौ सेवक और कम-से-कम सौ सेवक तो निकलने ही चाहिए।

सेवकों की तालीम का इन्तजाम हो

इन सेवकों के लिए दो-चार महीने की तालीम देने का इन्तजाम होना चाहिए। तालीम पाकर वे काम में लग सकते हैं। आप लोग इसकी व्यवस्था के बारे में सोचिये। एक ओर सुन्दर व्यवस्था एवं साहित्य-प्रकाशन चले तो दूसरी ओर सेवकों की तालीम का इन्तजाम हो। घर-घर सेवक पहुँचें। यह कोई कठिन काम नहीं है। इसकी व्यवस्था के लिए आपको यहाँ पैसा भी मिल सकता है। इस काम में आपको विशेष तकलीफ न होगी और न आपका अधिक समय ही लगेगा। यदि आप इस विचार को हरएक के पास पहुँचायेंगे तो उससे क्रांति होगी। क्रान्ति विचार से होती है।

सदा विचार का विकास होता रहे

हमें वैसी क्रान्ति नहीं करनी है, जो टिक न पाये। फ्रान्स की क्रान्ति अब कहने की ही बात रह गयी है। वहाँ कुल सत्ता एक मनुष्य के हाथ में आ गयी है। फ्रान्स का साहित्य कितना वैभवशाली रहा? रूसो, वाल्टेयर, विक्टर, ह्यूगो जैसे बड़े-बड़े साहित्यिक, वैज्ञानिक, विचारवान पुरुष वहाँ हो गये। फ्रान्स ने सारी दुनिया को बहुत-सी प्रेरणाएँ दीं। लेकिन अब वह जमाना गया। अब वह देश एक मनुष्य के हाथ में चला गया है, क्योंकि वहाँ क्रान्ति का विचार क्षीण होता गया। इसलिए विचार का हमेशा विकास होना चाहिए। नहीं तो विचार क्षीण होकर उसकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है।

आपको सिंधी साहित्य के प्रकाशन पर जोर देना होगा और इस काम के लिए जो दो-चार लोग मिले हैं, उनकी संख्या बढ़ानी होगी। दूसरा काम यह है कि कार्यकर्ताओं, सेवकों के लिए एक आश्रम चलना चाहिए, जिसमें वे तालीम पा सकें। यहाँ कम-से-कम सौ सेवक मिलें और वे सेवा का काम करें। वे दो प्रकार की सेवा कर सकते हैं। लोगों के शारीरिक दुःख में मदद पहुँचाना, यह एक सेवा होगी और दूसरी सेवा होगी, उन्हें मानसिक दुःख में सान्त्वना देना, दिमागी उलझन के हल होने में मदद करना। सेवक दो प्रकार के दुःखों का निवारण करने की कोशिश करें। तीसरा काम यह होगा कि ग्रामदान, भूदान आदि कार्य जो हमने उठाया है, उसे चलाना। उससे आर्थिक सवाल भी हल होंगे। आर्थिक सवाल हम व्यक्तिगत लेकर रहेंगे तो उसमें फसेंगे। उसमें उलझ जायँगे। इसलिए व्यक्तिगत सवाल हम न लें। उसमें न पड़ें, ऐसा सवाल हमने उठाया है, जिससे सारे समूह का आर्थिक मसला हल होगा।

ऐसे कामों के लिए सतत काम करनेवाले कार्यकर्ता सतत घूमते रहें। १. प्रकाशन का काम बढ़ना चाहिए। २. कार्यकर्ताओं के लिए उनकी तालीम के लिए आश्रम होना चाहिए और ३. सेवक निकलने चाहिए। वे किस तरह की सेवा करें, यह भी मैंने कहा है। [गताङ्क से समाप्त]

● ● ●

रास्ते में

ओरवाड़ा २२-१०-'५८

हम नारद से सर्वगामी बनें

[पिपलोद से ओरवाड़ा जाते समय रास्ते में विनोबाजी ने एक टेकड़ी देखी और एकदम उसपर चढ़ना आरम्भ किया। उस समय रात पूरी खत्म नहीं हुई थी और दिन शुरू नहीं हुआ था। फिर भी अन्धेरे में भी कंकड़ से भरे उस छोटे से टीले पर विनोबाजी चढ़े। उनके साथ पू० रविशंकर महाराज और सहयात्री भी थे। सबने विनोबाजी के साथ बैठकर पाँच मिनट की मौन प्रार्थना की। प्रार्थना के उपरान्त विनोबाजी ने छोटा-सा भाषण किया। —संपादक]

कार्यकर्ता-वर्ग के लिए उपयुक्त स्थान

हम लोग जिसे "कार्यकर्ता-वर्ग" कहते हैं, वह ऐसे ही स्थान पर होना चाहिए। कार्यकर्ता-वर्ग कभी भी घर में बैठकर नहीं हो सकता। इसके लिए समय भी ऐसा ही चाहिए। जब कि वृत्ति निर्मल हो और पेट में कुछ आहार न हो, तभी मनुष्य का चित्त विचार-ग्रहण के लिए समर्थ होता है। मुझे भी ऐसे ही स्थान में जो प्रेरणा मिलती है, वह घर पर नहीं मिल पाती। फिर वैसे वर्ग (कक्षाएँ) तो यूनिवर्सिटी और कालेजों में बहुत-से चलते हैं, किन्तु उनसे जीवन में कुछ लाभ नहीं होता। भले ही थोड़ा-बहुत तर्क-शक्ति को लाभ मिले। पर जीवन में तर्क-शक्ति का स्थान बहुत कम है। तर्क से थोड़ी जानकारी मिलती है। उससे बहुत ज्यादा लाभ नहीं होता। तर्क-शक्ति मनुष्य के पास ही है, ऐसी बात नहीं। वह प्राणीमात्र में होती है और जिसमें जितनी जरूरी है, उतनी मात्रा में रहती है। भगवान ने उतनी तर्क-शक्ति सबको दी है। इसलिए कालेज और यूनिवर्सिटी में अगर तर्क-शक्ति का विकास होता है तो मानव शिक्षण के बहुत बड़े विषय का ज्ञान प्राप्त नहीं करता। उससे उसे थोड़ी-बहुत जानकारी मिल जाती है।

युगप्रेरणा और अन्तःप्रेरणा का संगम हो

हम जानते हैं कि हमारे भूदान-कार्यकर्ता पाँच-सात साल से बहुत ही उत्साह से और सतत काम में लगे हैं। उसमें कुछ लोग नये हैं और कुछ पुराने भी। इन सबके पीछे एक युग-प्रेरणा है। इस युग-प्रेरणा के कारण सारा काम होता है। किन्तु इसीके साथ मानव को आध्यात्मिक प्रेरणा भी हो जाय तो उससे बहुत बड़ी शक्ति पैदा होगी। आँधी, तूफान में पक्षी उड़ते हैं और पत्ते भी। किन्तु पक्षी और पत्तों में यही फर्क है कि वह तूफान न होने पर भी आकाश में उड़ता है, पर पत्ते पड़े रहते हैं। इसी तरह युग-प्रेरणा होने पर बहुत-से लोग उसके साथ उड़ते और काम करते हैं। हम सबने यह देखा है कि बापू के जमाने में बहुत-से लोगों ने काम किया, जेल में गये और काफी कष्ट उठाया। किन्तु वे ही लोग जब स्वराज्य मिल गया तो सुखासीन हो गये। क्योंकि तूफान चला गया, इसलिए युग-प्रेरणा नहीं रही। स्वतन्त्र प्रेरणा न होने से वे पुनः अपनी मूल प्रकृति में आ पहुँचे। इसलिए युग-प्रेरणा के साथ अन्तःप्रेरणा, स्वयं प्रेरणा अन्दर से हो तो दुहरा बल मिलता है। अतः युगप्रेरणा के साथ अन्तःप्रेरणा का बल बढ़ना चाहिए और दोनों प्रेरणाओं का संगम होना चाहिए।

ग्रामदान के मार्ग पर चलें

हममें से कुछ लोगों ने ५७ तक ही त्याग की कल्पना की थी, पर वह ठीक नहीं। हम कभी यह कल्पना नहीं करते कि ५८ से ५९ तक भोग करेंगे। भोग हमारे शरीर के साथ मानो जुड़ा हुआ है। इसी तरह त्याग भी शरीर के साथ जुड़ना चाहिए। इसलिए ५७ या ५८ ऐसी गिनती नहीं होनी चाहिए। अगर हम चिन्तन के लिए सीमा रखेंगे तो ५७ तक जिस ढंग से काम चला, वह हो गया। अब जो रह गया, वही रास्ता है और उसे आगे चालू रखना है और आगे दूसरा रास्ता पकड़ना है। इसके लिए मार्ग-शोधन करना था, इसीलिए वह मुद्दत हम लोगों ने रखी। उसी तरह मार्ग-शोधन चल रहा है और परिणाम भी निकला है कि जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए। इस प्रयत्न में यह बात हमारे हाथ आ गयी है कि सब साथ चलें, साथ चढ़ें, साथ में नीचे गिरें और जो भी कुछ काम करना हो, वह साथ में करें। अर्थात् ग्राम-दान की बात हमारे हाथ में आ गयी है। इसलिए जो विचार था, वह अब निश्चित बन गया है।

लोक सम्मति के लिए सर्वोदय-पात्र की योजना

अब हमारे ध्यान में आया है कि सारे हिन्दुतान में एक ही दिन जाहिर हो जाय कि कोई भूमिहीन नहीं रहा। इसका मार्ग खोजने के लिए जमीन प्राप्त कर उसका वितरण करने में बुद्धि का विकास होता है। इसलिए पहले जो हुआ, वह योग्य ही था। किन्तु अब सारे हिन्दुस्तान में एक दिन में काम होना चाहिए। इसके लिए लोक-मानस तैयार होना चाहिए और उसके लिए लोक-सम्मति मिलनी चाहिए। यह बात मुझे केरल में पहली बार सूझी तो बहुत आनन्द हुआ कि एक नया विचार सूझा। समाज का परिवर्तन अहिंसा की दृष्टि से करना हो तो पहले लोगों के मानस का परिवर्तन होना चाहिए। हमारा साध्य है—सामाजिक क्रान्ति और साधन है अहिंसा और शान्ति। इसलिए हमें लोक-सम्मति चाहिए। इसके लिए हम सर्वोदय-पात्र और सम्मति-दान दें। यह विचार एक व्यापक और जीवन के मूल में प्रवेश करनेवाला है। अभी तक की विचार-पद्धति को बदलनेवाला यह विचार है। अभी तक गांधी-निधि या सरकार से या डिस्ट्रिक्ट कौंसिल से या म्युनिसिपैलिटी से और लोगों से पैसा माँगकर हमने काम किया। आज सर्वोदय के भी सब काम पैसे के आधार पर होते हैं। मुझे पैसे का विरोध नहीं, परन्तु यह पैसा लोगों का नहीं, विशिष्ट का होता है और इसमें अनेक प्रकार की कल्पना, वासना जुड़ी रहती है, जो हमें अनुकूल नहीं। इसलिए सरकारी पैसा लेने का अर्थ है—सरकारी शक्ति के अन्दर-अन्दर ही काम करना। मुझे इसमें बिलकुल रस नहीं।

सरकारी सर्वोदय-योजना का अनुभव

बालूभाई मेहता सरकारी सर्वोदय-योजना में रहे थे। उससे पहले वे मेरे पास सलाह माँगने के लिए आये थे। वे हर काम में मेरी सलाह लेते और फिर काम शुरू करते हैं। मैंने उनसे कहा कि यह काम आप और मेरे जैसे लोगों के लिए नहीं है। इसके लिए बहुत लोग मिल सकते हैं। उन्होंने मुझसे थोड़ी दलील की तो मैंने कहा कि दलील की कोई जरूरत नहीं, आपको जो ठीक लगे, शौक से कीजिये। आपका जो अनुभव आयेगा, उससे या तो मैं सीखूँगा या आप या हम दोनों सीखेंगे। फिर उन्होंने वह काम

शुरू किया। अप्पासाहब पटवर्धन ने भी यह काम शुरू किया तो उन्होंने मुझे पूछा नहीं, स्वयं निर्णय कर लिया था। बालूभाई ने मेरी सलाह लेकर काम किया और तीन-चार साल अनुभव लिया। फलतः जब भूदान-आन्दोलन शुरू हुआ तो उसमें वे पूरा समय नहीं दे सके, क्योंकि उस काम में पूरे जकड़े हुए थे। वह काम उनके मन के अनुकूल भी नहीं था। काफी दिक्कतें उठानी पड़ीं और ऊपर से बहुत-सी शर्तें भी बन्धन के रूप में आयीं। फिर मैंने उनसे पूछा कि "क्यों बालूभाई, पुण्यसंग्रह पूरा हुआ या नहीं ?" वे समझ गये और उन्होंने तथा अप्पासाहब ने उस काम से मुक्ति पायी। उनका भ्रम नष्ट हो गया, ऐसा वे कहते थे। इसका अर्थ यह नहीं कि सरकार कुछ करे तो उसमें हम मदद न करें या सरकार की मदद न लें। हम सरकार की मदद न लें और उसका तिरस्कार भी न करें, ऐसा तभी कहा जायगा, जब हम सरकार का पैसा न लें।

हमारा सारा काम लोकाधार पर हो

मुझे किसी प्रकार की कोई शंका नहीं है कि हमारे काम में लोक-सम्मति चाहिए और सारा काम लोगों के आधार पर ही होना चाहिए। हर घर से थोड़ा-थोड़ा मिलना चाहिए। जिस तरह से सरकार कर (टैक्स) लेती है, उसी तरह यह भी एक खुशी का कर हो। अपनी खुशी से लोग हमें दें। सरकार की लश्करी सेना होगी तो अपनी शांति-सेना। सरकार का कर होगा तो अपना सम्मति-दान। सरकार कानून से जो काम करती है, वही हम कणगा से करें। आज कानून से जमीन सुधारने की बात होती है, किन्तु उसमें जितनी देरी लगेगी, उतना यह कभी न होगा। ७॥ साल पहले किया होता तो कुछ होता। परिवार में सब लोगों ने अलग-अलग जमीन बाँट ली है। लोग मूर्ख नहीं कि अपने अकेले के नाम पर सारी जमीन रख लें। अब अगर कानून बनेगा तो वह जैसा का तैसा रह जायगा। उसका कुछ भी उपयोग न होगा। सारांश कुछ काम कानून से हो सकते हैं, पर यह काम नहीं।

गतवर्ष येलवाल परिषद् में जाहिर हुआ कि सभी दल हमारे काम का पूरा सहकार करेंगे। किन्तु एक साल हो गया, जमीन का अभी तक कोई सुधार नहीं हुआ। इसलिए कहते हैं कि ग्रामदान का काम तो धीरे-धीरे चलेगा और उसमें हमारा पूरा-पूरा सहकार रहेगा। इतना कह देने से हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, ऐसा उन्हें लगता है। इस तरह वे मेरा काम क्या करेंगे ? अगर वे यह काम करते तो बाबा को ७॥ साल तक क्यों घूमना पड़ता ? लोकशाही में भी औरंगजेब के जमाने के जैसा ही होता है। याने उस समय किसी काम को अगर दो महीने लगते थे तो वहाँ छह महीने लग जाते हैं। अर्थात् इनके हाथ में तो समय पर पहुँच जाता है, परन्तु वहाँ अर्जेण्ट, वेरी अर्जेण्ट वेरी वेरी अर्जेण्ट ऐसे फाइलों के विभाग पड़ते हैं और कभी वह फाइल हाथ में आ जाय तो उसपर विचार होता है। हमेशा ऐसा ही होता है, ऐसी बात नहीं। फिर भी मैं यही मानता हूँ कि दूसरे बहुत काम कानून से हो जायँ, पर यह काम कानून से हो नहीं सकता।

व्यावहारिक चिन्तन के साथ आत्मचिन्तन भी जरूरी

यह काम करुणा का काम है। अतः इसके लिए हमें स्वतंत्र जन-शक्ति निर्माण करनी होगी। इसके लिए हमें गहरी अन्तःप्रेरणा चाहिए। कार्यकर्ताओं को व्यावहारिक चिन्तन के साथ ही व्यापक रूप में आध्यात्मिक चिन्तन भी करना चाहिए। मन जितना निर्विकार, अहंकार, मत्सर, द्वेष, अविश्वास और विकार मुक्त हो सके, करना चाहिए ! इस तरह जितना ही ज्यादा काम कर सकें, उतना हमारा ही काम सर्व-व्यापक होगा।

हम सबको नारद-मुनि बनना चाहिए। नारद को कृष्ण भी बुलाता था और कंस भी। वह दोनों के घर जाता था। दोनों को लगता था कि यह हमारा हितचिन्तक आया है। भक्ति की यही शक्ति है, जो नारद में थी। प्रभु के घर में ही नहीं, प्रभु के हृदय में भी प्रवेश पा सकते हैं। इसी तरह हमें भिन्न-भिन्न सरकारें, पंथ, पक्ष सबके हृदय में प्रवेश पाना चाहिए और उन सबको ऐसा लगना चाहिए कि यह तो मेरा प्रिय मित्र ही आया है। अगर हम निरहंकारी होंगे, तभी यह हो सकता है। परमेश्वर बासुरी बजाता है। बासुरी पोली होने पर ही बजती है। अगर वह भरी हो तो नहीं बजेगी। इसी तरह अगर हम निरहंकारी होंगे, हमारा अहंकार जायगा तो हम पोल होंगे। फिर भगवान अपनी बासुरी बजायेगा तो परमेश्वर का ही सुर निकलेगा। नहीं तो फिर अपना ही सुर निकलेगा और फिर काम बिगड़ जायगा, यह ध्यान में रखिये। ●●●

बड़ोदा-निवासी पुराने मित्रों के बीच

बड़ोदा (बम्बई राज्य) २९-१०-'५८

अहिंसा के विचार के लिए घर-घर से सम्मति प्राप्त करें

[४२ साल पहले जब पू० विनोबाजी बड़ोदा में रहते थे तो उस समय के उनके परिचित सभी मित्रों का एक स्नेह-सम्मेलन बड़ोदा में हुआ। सम्मेलन में श्री धोत्रेजी ने कुछ संस्मरण सुनाये और फिर एक-एक व्यक्ति पू० विनोबाजी से मिला। इसके बाद पू० विनोबाजी ने चन्द शब्द कहे।] —सम्पादक

अब सख्य-भक्ति का जमाना आ गया

मनुष्य के जीवन में अनेक नाते होते हैं और उनके जरिये उसे प्रेम का अनुभव आता है। ये नाते भाई-बहन का नाता, पति-पत्नी का नाता, माता-पुत्र का नाता, पिता-पुत्र का नाता आदि हैं। उनमें कुछ नातों का मुझे अनुभव भी है। मेरे माता थी, पिता थे, भाई हैं। फिर भी अपने जीवन में मुझे आत्मानुभूति मैत्री के सम्बन्ध में ही हुई। माँ को बच्चे को देखकर आत्मा का दर्शन होता है, उसमें अपना ही रूप दीख पड़ता है। वह एक विशेष अनुभव होता है। इसी तरह ऐसे किसीके जीवन में कुछ और अनुभव होते हैं। जिसके जीवन में माता का अनुभव होता है, वह परमेश्वर को मातृरूप में देखता है। जिसके जीवन में पिता के सम्बन्ध का अनुभव होता है, वह परमेश्वर को पितृरूप में देखता है। किन्तु मेरे जीवन में वह स्थान मैत्री को मिला है। जिसको जो अनुभव आया, वह उसी नाते ईश्वर की ओर देखता है। मैं भी जब ईश्वर का अनुभव करता हूँ तो "त्वमेव माता च पिता त्वमेव" यही

अनुभव करता हूँ, ईश्वर सब कुछ है। फिर भी मन में यही आता है कि वह मेरा सखा है, मित्र है। इसीलिए मैं सारी दुनिया पर वही न्याय लागू कर कहा करता हूँ कि "अब सख्य-भक्ति का जमाना आ गया है।"

मित्रभाव मेरे जीवन का विशेष आकर्षण

मैत्री में अत्यन्त निर्भयता होती है। वहाँ स्वार्थ की बू तक नहीं होती है। अन्य के सम्बन्धों में स्वार्थ या आसक्ति होती है। माता पुत्र से कुछ नहीं चाहती है, वह उसपर निःस्वार्थ प्रेम करती है। फिर भी उसके मन में बच्चे के लिए आसक्ति होती है। इस तरह किसी नाते में आसक्ति, किसीमें स्वार्थ तो किसी-में दोनों होते हैं। किन्तु मैत्री का सम्बन्ध आसक्ति और स्वार्थ से रहित ही हो सकता है। यह नहीं कि वह वैसा ही होना चाहिए, पर हो सकता है। इसलिए अध्ययन करते-करते जब मैं वेद तक पहुँचा तो वेद के इस मन्त्र ने मेरा ध्यान खींच लिया : "मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे॥" याने सारी दुनिया मेरी ओर मित्र की दृष्टि से देखे, इसलिए मैं भी सारी दुनिया की ओर मित्र की दृष्टि से देखूँगा। वैसे वेद में मातृभाव, पितृभाव आदि के वाक्य भी आये, लेकिन इस वाक्य ने मुझे खींच लिया। इस तरह मेरे जीवन में यह एक विशेष वस्तु रही है।

जैसे अभी रघुनाथ धोत्रेजी ने बताया, वह सही है। वह बात वही कह सकता था, दूसरे नहीं। कारण दूसरों को वैसा अनुभव नहीं था। कुछ तो मुझसे डरते भी हैं। लेकिन रघुनाथ ने कहा कि "मेरा हृदय तो प्रेम से भरा है।" यह उसने कोई अतिशयोक्ति नहीं की। मित्रों के लिए मुझे इतना प्रेम है कि यद्यपि उनके आचार-विचार मेरे आचार-विचारों के साथ नहीं मिले, उनमें बचपन से आज तक काफी फर्क पड़ा तो भी मेरी प्रीति अत्यन्त निरपेक्ष रही है। वे मित्र हैं, बस, इससे ज्यादा मैत्री का कोई कारण नहीं। मैं जब यह देखता कि मेरे मित्र किसी विषय में प्रवीण हो रहे हैं तो मैं उन विषयों का अध्ययन कम कर देता था। मुझे लगता कि वह अध्ययन कर ही रहा है तो मैं भी नाहक उसका बोझ क्यों उठाऊँ? इसीलिए रघुनाथ जब भूमिति में प्रवीण होने लगा तो मैंने भूमिति का अध्ययन कम कर दिया।

माता, पिता, भ्राता सभी मित्र

बालकोबा और शिवाजी से भी मेरी मैत्री की भावना है। फिर आज मेरी माँ होती तो उसके और मेरे बीच में मैत्री की ही भावना होती। पिता होते तो मैं मानता हूँ कि उनके और मेरे बीच मैत्री की ही भावना होती, यद्यपि उनके और मेरे बीच कुछ संकोच था। मैं उन्हें योगी ही मानता था—पहले भी और अब भी मानता हूँ। कारण ईश्वर के साथ मेरी मैत्री की ही भावना है।

एक बार बालकोबा ने मुझे सितार की पुस्तक दी। उन दिनों वह सितार सीख रहा था। मैंने पुस्तक के सहारे "मांड" राग दो-तीन दिनों में बजाया। बालकोबा ने कहा कि "तुमने बहुत अच्छा बजाया।" तब मैंने उसे यह कहकर छोड़ दिया कि अब तो मुझे आता ही है। बालकोबा को आता है। एक मनुष्य प्रवीण हो रहा है तो मैं क्यों सीखूँ? ये सभी मुझे छोड़ ही नहीं सकते। अभी तक का मेरा यही अनुभव रहा है और किसीको किसी कारण से दूर जाना पड़ा तो वह भी दिल से दूर नहीं हुआ और ऐसे लोगों को उसका रंज भी रहा।

मार्गदर्शकों के प्रति भी मैत्री दृष्टि

इस तरह मुझमें मैत्री की भावना है। ये नारायण, प्रबोध, मीरा आदि भी, जो मेरे साथ हैं, मुझे अपने मित्र लगते हैं। कभी-कभी लोग मुझे नेता बनाने की फिक्र में पड़ते हैं तो मैं कहता हूँ कि नेता बनना मेरे स्वभाव में नहीं है। यद्यपि गांधीजी जैसे और जमनालालजी जैसे मार्गदर्शन करनेवाले मुझे मिले तो भी मेरा दिल उनकी ओर मैत्री के नाते से ही देखता है। यह एक खास बात आज मुझे आपसे कहनी थी।

मैं अत्यन्त स्वातंत्र्यप्रेमी

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि विचारों के आदान-प्रदान में मैं हमेशा स्वतंत्र रहा हूँ। मेरा विचार किसीने नहीं माना, इसका मुझे तनिक भी दुःख नहीं हुआ। मैत्री के नाते में वह बैठता ही नहीं। मैत्री में तो जो चीज जँचती है, उसे लेना और जो नहीं जँचती, उसे छोड़ना पड़ता है। इसीलिए मेरी बात किसीने नहीं मानी तो उसका मुझे अभिमान और खुशी मालूम हुई कि उसे वह बात कबूल नहीं, इसलिए उसने नहीं मानी। इस तरह अपने को स्वातंत्र्य का अत्यन्त प्रेमी मानता हूँ और यह बात मैत्री के कारण ही हो सकी।

[इसके बाद मित्रों की इच्छानुसार पू० बाबा ने चन्द शब्द मराठी में कहे।]

मराठी से अद्भुत प्रेम

मराठी भाषा के प्रति मुझे अद्भुत प्रेम है। किंतु इसका कारण यह नहीं कि वह मेरी माँ की भाषा थी। माता की भाषा के नाते वह मुझे प्रिय होनी ही चाहिए। फिर भी मराठी के प्रति मेरे प्रेम का कारण यह है कि मध्ययुग में महाराष्ट्र में ऐसे कुछ महान पुरुष हो गये, जिन्होंने आध्यात्मिक साहित्य के क्षेत्र में कमाल कर दिया। ज्ञानेश्वर से रामदास तक उन्होंने जिस दिव्य और भव्य साहित्य की सर्जना की, उसीके कारण मराठी में संकुचित भावना आ नहीं सकती, यद्यपि आज वैसा दीख रहा है। आज मराठी भाषा को जो स्तर प्राप्त हुआ है, जो कि अखबारों में दीख पड़ता है, वह बहुत नीचे उतर गया है। फिर भी आज भी महाराष्ट्र में "ज्ञानेश्वरी" और "गीता-प्रवचन" की जितनी प्रतियाँ खपती हैं, उतना और कोई भी साहित्य नहीं। आज भी ज्ञानेश्वरी के ७-८ संस्करण प्रकाशित हैं और वे सभी खप रहे हैं। किसी भी प्रकाशक को उससे हानि नहीं होती। लाभ ही होता है।

मराठी इतिहास का आज का अध्ययन गलत

आखिर यह सब कहाँ जाता है? इतना जो आध्यात्मिक ज्ञान प्रकट हुआ और आज भी लोग जिसे किसी-न-किसी निमित्त से पढ़ते हैं, वह कहाँ जाता है? अमेरिका, इंग्लैण्ड और जापान में भी रहनेवाला मराठीभाषी अपने साथ "ज्ञानेश्वरी" "मनाचे श्लोक" कुछ तो भी ले जाता है। यह सब कहाँ चला जाता है? इसपर जब मैं सोचता हूँ तो मेरे ध्यान में आ जाता है कि आज जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह गलत है। आज इतिहास जिस तरह का पढ़ाना चाहिए, वह पढ़ाया नहीं जाता। यही भावना बनायी जाती है कि पेशवाई में जो शौर्य दिखाया गया, वही हमारा इतिहास है। किन्तु यह भारी भूल है। मैं मानता हूँ

कि पेशवाई में बहुत बड़ा पराक्रम दिखलाया गया। अटक के पास भारत का झंडा फहराया गया। बंगाल में मराठों का राज्य हुआ, यह सब सच है। किन्तु जिस दिन ये सारी बातें एकदम भूल जायँगी, उस दिन भी ज्ञानेश्वरी पढ़ी हुई दीख पड़ेगी।

मराठी-जन अन्य प्रान्तों में दूध में शक्कर बनें

आप लोग बड़ोदा में रहनेवाले मराठीभाषी जन हैं। आप लोग गुजरात में रह रहे हैं। इसलिए जातीय, राजनीतिक और दलीय भेदों से अपना ध्यान हटा लें। यही सलाह मैंने धारवाड़ के मराठीभाषी जनों को दी थी। मैंने उनसे कहा था कि महाराष्ट्र में ही रहनेवाले मराठीभाषियों की बात अलग है। लेकिन आप लोग दूसरे प्रान्त में रहते हैं, इसलिए दूध में शक्कर बनकर रहिये। कोई किसीसे पूछे कि क्या पी रहे हो? तो वह यही कहेगा कि दूध पी रहा हूँ। लेकिन शक्कर उसमें चुपचाप जाकर मिल जायगी और उसकी मिठास पीनेवाले को ही मालूम पड़ेगी। यहाँके मराठीभाषी जन भी अपना जीवन दूध की शक्कर की तरह बनायें। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि महापुरुषों ने हमें जो सिखाया, वही बाना हम अपनायें और यहाँकी जनता के बीच तन्मय हो जायँ।

मैंने अपना स्वभाव जेब में दबा लिया

अभी किसीने कहा कि इन दिनों मैंने अपना स्वभाव अपनी जेब में दबाकर रख लिया है। यद्यपि मैं कमीज नहीं पहनता, इसलिए मेरे पास जेब है ही नहीं। फिर भी उनका यह कहना सोलहो आने सच है। अधिकतर मेरा स्वभाव ऐसा नहीं कि इस तरह जन-समुदाय के बीच घुल-मिल जाऊँ। लोगों से अलग रहना ही मेरा स्वभाव है और आज भी मैं मन से अलग ही रहता हूँ। फिर भी जन-समुदाय के बीच हिलने-मिलने की जो प्रेरणा मुझे हुई, वह नयी नहीं, पुरातन ही है। किन्तु साधना की अवस्था में मुझे लगता कि सारा शक्ति-संचय अन्दर ही है, बाहर नहीं। इसलिए उसे अर्जन करने का अवसर मिल रहा है तो उसे व्यर्थ न खोया जाय। आज अगर बापू होते तो मैं पहले जैसा ही काम में लगा रहता। अगर वे आदेश देते तो बाहर भी आता। लेकिन वैसे मैं जिस काम में लगा था, उसीमें तन्मय हो रमता। किन्तु उनके जाने के बाद मुझे मालूम पड़ा कि अब इस समय यदि मैं जन-समुदाय के बीच दाखिल नहीं होता तो वह कर्तव्य का अवसर खोने जैसा होगा।

आज अपने निकट के मित्रों से मेरी अपील है, बचपन से मेरे साथ रहनेवाले अपने मित्रों से मैं कह रहा हूँ कि इस अन्तिम यात्रा में भी आप मेरे साथ आयें।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः

यह सच है कि अब हम लोग श्मशान की ही राह पर हैं, फिर भी मुझे वहाँ जाने की कोई जल्दी नहीं पड़ी है। किन्तु यह सही है कि अब हम लोगों की गति उसी ओर है। इसलिए इस समय भी आप लोग मेरे साथ आयें। मैं मानता हूँ कि मेरे जीवन के तीन भाग बीत गये और अब दो शेष हैं। अब मैंने ऐसा काम उठाया है कि उसमें मेरे सभी साथियों की, कुल की आवश्यकता है।

यह साहित्यिक भाषा नहीं, हृदय की पुकार

मैं जब कहा करता हूँ कि "मुझे शत-प्रतिशत घरों में सर्वोदय-पात्र चाहिए" तो उसमें मैं किसी तरह का "अलंकार" करने की भावना नहीं रखता। अगर मुझे 'अलंकार' ही करना होता तो मैं कहता कि "मुझे १२० प्रतिशत घरों में सर्वोदय-पात्र चाहिए"। किंतु मैंने जो शत-प्रतिशत घरों में सर्वोदय-पात्र की माँग की, उसमें मैंने किसी भी तरह की साहित्यिक भाषा नहीं बोली। बल्कि मेरा हृदय मुझसे कहता है कि ऐसा हुए बगैर भारत और विश्व सुरक्षित नहीं है। इसलिए अहिंसा के विचार के निमित्त घर-घर से सम्मति हासिल करने का पुरुषार्थ हमें करना ही होगा। उसके लिए एक, दो, पाँच, दस, जितने भी साल लगें, देने ही पड़ेंगे। उससे जो शक्ति निर्माण होगी, वही देश और दुनिया को बचायेगी।

गृहस्थी या संस्था से मुक्त हो चले आयें

इसलिए जो आज जिस जगह है, उसे वहीं घर-घर जाकर लोगों से यह बात कहनी चाहिए। मेरे वृद्ध मित्रों को चाहिए कि वे अपने दूसरे-तीसरे सब कर्तव्य अलग रखकर इस काम में सारी शक्ति लगायें। इसमें शंकराचार्य से मुझे प्रेरणा मिली है। उन्होंने कहा है—'न यावद्जीवं कर्तव्यत्वप्राप्तिः कस्यचिदपि कर्मणः' अर्थात् कोई भी काम मरते दम तक करना ही चाहिए, ऐसी जिम्मेवारी हमपर नहीं है। बच्चे, घर-बार, संसार आदि-आदि अनेक जिम्मेवारियाँ मनुष्य को उठानी पड़ती हैं। एक हद तक उसे उन्हें उठाना चाहिए। किन्तु जो आमरण वह जिम्मेवारी उठाने की बात कहेगा, वह मुक्ति की राह ही नहीं पायेगा। इसलिए मुक्ति की राह पर चलनेवाले राहगीरो, आपको कभी-न-कभी अपने माने हुए कर्तव्य को तोड़ना ही होगा। मेरे मन में इसके बारे में कोई सन्देह नहीं। नहीं तो यह जिम्मेवारी जो मैंने उठायी है, उसका बोझ मेरे सिर पर होता और मुझे रात को दो मिनट भी नींद न आती। लेकिन मैं सारा बोझ पटककर खा जाता हूँ। उस वक्त मेरे मन पर कुछ भी जिम्मेवारी का बोझ नहीं रहता। आखिर सारे बाहरी कर्तव्य हैं। इसलिए आज तक आपके जो माने हुए कर्तव्य थे, भले ही वे गृहस्थ के हों या संस्था के, मेरी राय में उनसे मुक्त होकर आपको इस कार्य में आना चाहिए। फिर आप देखेंगे कि इससे कैसी शक्ति पैदा होती है। अपने बचपन के साथियों से मेरी यही अपील है।

आज जो लाठी के सहारे के बिना नहीं चल सकते और मुझसे बड़े हैं, वे रविशंकर महाराज पाँव में जख्म होने पर भी चलते हैं। उनकी मिसाल हमारे सामने है। आखिर उन्हें इतनी करुणा क्यों हो रही है? इसीलिए कि वे समझे हुए हैं कि वास्तव में हमें दुनिया में अहिंसा का विचार फैलाना हो तो इस वक्त दूसरी सारी चीजें फेंक इसीको उठाना चाहिए। इसलिए मेरी यह अपने पुराने मित्रों से खास अपील है, नये मित्रों से भी है ही, क्योंकि नये काम के लिए नये लोग ही चाहिए। फिर भी वह पुराने मित्रों से खास अपील है। मुझे पूरी उम्मीद है कि यह पूर्ण हुए बिना परमेश्वर हमें यहाँसे नहीं उठायेगा। किन्तु यदि आप सब लोग उसका अन्त देखें और मदद में न आयें तो शायद वह पहले ही उठा ले। यदि आप सब मेरी मदद में आ जायँ तो वह मुझे इस काम को पूरा कर के ही उठायेगा। ● ● ●

पत्रकारों के बीच

रणोली (बड़ोदा) ३०-१०-'५८

पत्रकार जीर्णवाद छोड़ लोकनीति का महत्त्व पहचानें

प्रश्न :—पत्रकार भूदान, ग्रामदान कार्य में क्या मदद दे सकते हैं ?

विज्ञानयुग में राजनीति का महत्त्व घट गया

उत्तर :—एक बार मैंने अखबारों में जो लिखा रहता है, उसपर आलोचना की थी। उससे कई पत्रकार नाराज हुए। किन्तु वे जानते नहीं कि मैं पत्रकारों की बहुत इज्जत करता हूँ, इसीलिए मैंने वह आलोचना की। पत्रकारों को जानना चाहिए कि इस युग में राजनीति का महत्त्व बिलकुल कम हो गया है। पुराने युग में उसका महत्त्व अवश्य था, किन्तु आज के इस विज्ञानयुग में आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक उत्थान के लिए समाज की ओर से चलाये जानेवाले आन्दोलनों का ही महत्त्व रहेगा। दुनिया पर उन्हींका तुरन्त असर होगा। दलगत राजनीति, सरकार आदि का कोई महत्त्व न रहेगा।

आपने देखा कि पाकिस्तान में एकदम चक्र-परिवर्तन हुआ। लोकशाही का परिवर्तन सैनिकशाही में हो गया। वैसे पाकिस्तान का उदाहरण अवश्य महत्त्व रखता है। वह स्वतन्त्र देश है, लेकिन वहाँ भी सेनापति के हाथ में सत्ता सौंपी गयी है। इसलिए हम कह नहीं सकते कि विज्ञान-युग में राजनीति का रंग कब बदलेगा और बदलने पर वह कितना टिकेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि आज राजनीति का महत्त्व कम हुआ और लोकनीति का बढ़ा है। इसे ध्यान में रखकर पत्रकार लोकनीति की चर्चा किया करें तो उनका कार्य सार्थक होगा। नहीं तो आजकल किसी मन्त्री के यहाँसे वहाँ जाने में, कहीं कुछ उद्घाटन कर देने या किया, व्याख्यान देने पर उनकी जो एक-एक, दो-दो कालम रिपोर्टें छपती हैं, यह सारा जीर्णवाद है। इसमें आधुनिकता का लेश भी नहीं। इसलिए पत्रकार जरा वैज्ञानिक ढंग से सोचें और ठीक मूल्यमापन भी किया करें। आज यदि बंगाल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे व्यक्ति होते तो मैं नहीं समझता कि आज के पत्रकार उन्हें उतना महत्त्व देते, जितना कि वे कांग्रेस-अध्यक्ष को या दूसरी पार्टी के नेता को देते हैं। यह एक गलत धारणा चल रही है। मेरा पत्रकारों पर यही मुख्य आक्षेप है। अगर वे इस बारे में अपनी दृष्टि सुधारें तो बहुत काम कर सकते हैं।

प्रश्न:—आपने शांति-सैनिको के लिए जिन गुणों की अपेक्षा की है, वे बहुत ऊँचे हैं। व्यवहार में इतने ऊँचे गुणवाले सैनिक नहीं मिलेंगे। इसलिए आपने क्या विकल्प रखा है ?

इतने भी अच्छे लोग न मिलें तो सेना की ही चलेगी

उत्तर:—हमें करोड़ों की शांतिसेना नहीं चाहिए। हम पाँच हजार व्यक्तियों के पीछे एक के हिसाब से सारे देश से केवल पचहत्तर हजार सैनिकों की माँग करते हैं। यह कोई बहुत बड़ी संख्या नहीं। अभी बड़े राष्ट्रों में सेना कम करने के सुझाव पर चर्चा चल रही थी तो इसकी ओर से सुझाव रखा गया था कि हम सेना कम कर बीस लाख रखेंगे। याने बीस लाख की सेना को उन्होंने कम सेना माना। फिर मैं तो सारे हिन्दुस्तान के लिए, पैंतीस करोड़ के लिए सिर्फ पचहत्तर हजार ही सैनिक माँग रहा हूँ। अगर इतने भी अच्छे लोग नहीं मिलेंगे तो फिर सेना की ही चलेगी। उसके लिए दूसरा विकल्प नहीं। धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से जगद्गुरु कहलानेवाले भारत में—जिसके पीछे दस हजार साल की परम्परा है और जो गांधीजी तथा अहिंसा का दावा करता है—इतने भी व्यक्ति न मिलें तो फिर अहिंसा कभी नहीं चलेगी। कल मैंने कहा था कि अगर गुजरात में अहिंसा-शक्ति नहीं तो दूसरी कौन-सी शक्ति है ? यहाँ हिंसा की न तो शक्ति है और न वृत्ति ही है। फिर यदि आप अहिंसा के लिए तैयार न हों तो बिलकुल निकम्मे साबित होंगे। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि गुजरात कम-से-कम साढ़े-तीन हजार शांति-सैनिकों की सेना देगा। यहाँ गांधीजी का साहित्य भी खूब फैला हुआ है। इसलिए मेरी यह माँग ज्यादा नहीं है। मैं नहीं मानता कि शांति-सैनिक के लिए हमने जो आदर्श रखा है, वह ऊँचा है। वह तो जितना चाहिए, उतना ही याने कम-से-कम है।

प्रश्न :—महाराष्ट्र में शांति-सेना की आपकी माँग का जवाब कैसे मिला ?

दारोमदार किसपर ?

उत्तर :—ठीक ही मिला। वैसे सब प्रान्तों में अभी कम ही शांति-सैनिक मिले हैं। फिर भी शांति-सेना का विचार सबको प्रिय लगता है। बम्बई राज्य में अभी द्विभाषिक के प्रश्न पर जो झंझट चलता है, वैसा तो हमेशा ही चलेगा। आज एक कारण से चल रहा है, कल दूसरे कारण से तो परसों तीसरे कारण से चलेगा। जब तक जनता राजनैतिक सत्ता द्वारा होनेवाले कार्य को अधिक महत्त्व देगी, तब तक यही चलेगा। उड़ीसा, कर्नाटक बिहार आदि प्रान्त तो एकभाषी ही हैं, परन्तु वहाँ कुछ भी लड़ाई-झगड़े नहीं चल रहे हैं, ऐसी बात नहीं। वहाँ भी जनता में काफी असंतोष है। कारण आज हमने सारा दारोमदार राजसत्ता पर सौंपा है। इसलिए राज्ययन्त्र द्वारा, मन्त्रियों या अधिकारियों द्वारा जो भी अच्छा-बुरा काम होगा, उसकी प्रतिक्रिया लोगों पर होगी ही और कुछ-न-कुछ असंतोष, क्लेश, आदि पैदा होते ही रहेंगे। आज यहाँ द्विभाषिक के कारण असंतोष है, किन्तु एकभाषी राज्य हो तो भी यही चलेगा।

इसमें मुख्य बात यही है कि प्रजा यह समझे कि हमें अपना मुख्य कार्य अपने ही हाथ में रखना चाहिए। अगर जमीन की मालकियत कायम रहे तो फिर राज्य एकभाषी हो या द्विभाषी, कोई फर्क नहीं पड़ता है और जमीन की मालकियत मिट जाय तो भी राज्य के एकभाषी या द्विभाषी होने पर कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए जब तक राज्यसत्ता को महत्त्व देने की बात कम न होगी, तब तक यही चलता रहेगा। तब तक मध्यम वर्ग बुनियादी विषय में उदासीन रहेगा और ऊपर-ऊपर यही आन्दोलन करता रहेगा।

शांति-सेना की सेवा-कार्य-पद्धति

ऐसी हालत में शान्ति-सेना लोगों के हृदय के अंदर घुसकर काम करेगी और वहींपर धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र पैदा करेगी। शांति-सेना इस पद्धति से काम करेगी कि हर घरवाले को वह प्रिय मालूम हो। अस्पताल में डॉक्टर सेवा करता है तो बीमार से यह नहीं पूछता कि तू एकभाषी राज्य मानता है या द्विभाषी। वह तो यही पूछता है कि तेरी बीमारी क्या है ? सारांश, सेवा करने-

वाला डाक्टर लोकप्रिय होता है। इसी प्रकार की मूलभूत सेवा करने के काम में शांति-सेना लगी रहेगी। इसलिए लोगों में उसकी नैतिक प्रतिष्ठा रहेगी। अशांति के मौके पर ये शांति-सैनिक खड़े हो जायँगे तो अशांति को रोक सकेंगे। ऐसे प्रसंग पर उन्हें मार खानी पड़े तो वे मार खायेंगे और वह मार भी उन्हें मीठी लगेगी।

प्रार्थना-प्रवचन

रणोली (बड़ोदा) ३०-१०-'५८

आज विश्वशक्ति अहिंसाशक्ति के निर्माण के अनुकूल

मनुष्य को जो प्रेरणा मिलती है, वह हमेशा व्यक्त से नहीं, अव्यक्त से ही मिलती है। सभी क्रियाएँ, आन्दोलन और हलचलें व्यक्त में शुमार हैं, पर मूल प्रेरणाएँ अव्यक्त में होती हैं। बहुत-से लोग केवल व्यक्त को ही देखते हैं। उन्हें इसका भान ही नहीं होता कि विश्व में कैसी प्रेरणाएँ काम कर रही हैं। विश्व-इतिहास का अध्ययन करनेवालों या खूब अखबार पड़नेवालों को भले ही यह ज्ञान हो कि आज दुनिया में क्या चल रहा है, फिर भी उन्हें विश्व-प्रेरणा का ज्ञान नहीं होता।

ऋषि ही अव्यक्त प्रेरणाओं के ज्ञाता

विश्व-प्रेरणाएँ मूलत : अव्यक्त हुआ करती हैं और उसका ज्ञान और भान उन्हींको होता है, जो व्यक्त से परे चिन्तन कर सकते हैं। अपनी बुद्धि, इन्द्रियाँ, मन और शरीर और बाह्य परिस्थिति—इन सबसे परे जानेवालों को ही मालूम हो सकता है कि दुनिया में विचार का प्रवाह कैसे चल रहा है। वेद ने इन प्रवाहों को "मरुद्गण" कहा है। ये मरुद्गण सारी दुनिया में अव्यक्त रूप से घूमते, हृदय को स्पर्श करते और सबसे काम करवाते हैं। लोग जानते भी नहीं कि अमुक प्रेरणा का स्पर्श मुझे हुआ और वह मुझसे काम करवा रही है। किन्तु जिन्हें उन प्रेरणाओं का ज्ञान हो जाता है, वे उस-उस जमाने के ऋषि कहलाते हैं। इस तरह के ऋषि परमेश्वर की कृपा से पैदा होते हैं। उन्हें क्रान्त-दर्शन, अव्यक्त का दर्शन, उस पार का दर्शन, मरुद्गणों के कार्य के प्रकारों का स्पष्ट दर्शन होता है।

मुझे अव्यक्त प्रेरणाओं का स्पष्ट दर्शन

ऐसे ऋषियों में मेरी भी गिनती होगी, क्योंकि ये अव्यक्त प्रवाह जिस तरह काम कर रहे हैं, उस तरह मैं बरसों से "ध्यान-धारणा, समाधि" करता आया हूँ। योगशास्त्र में जिसे "ध्यान, धारणा, समाधि" कहते हैं, उन तीनों को एक करने पर उसे संयम यह नाम दिया जाता है—"त्रयो एकत्र संयमः।" मैंने लगभग २५-३० सालों से मरुद्गणों का ध्यान, धारणा और समाधिपूर्वक चिन्तन का तटस्थता से अभ्यास किया है। बापू के रहने तक किसी भी स्थूल आन्दोलन में मैंने बहुत हिस्सा नहीं लिया, किन्तु सतत निरीक्षण अवश्य करता रहा। उसी तटस्थ निरीक्षण से मुझे प्रेरणाएँ हुईं। उनके जाने के बाद ये प्रेरणाएँ स्पष्ट रूप से मेरे जीवन में सफल हो रही हैं। और मुझे परिव्रज्या करने के लिए मजबूर कर रही हैं। इनके पीछे अव्यक्त मरुद्-प्रवाह है।

आज का भयंकर रूप अभयंकर रूप की प्रस्तावना

इसलिए मैं कहना चाहता हूँ, खास कर बड़ोदा के भाइयों के लिए कहता हूँ कि आप, मैं, दूसरे भी सब लोग एक शान्ति के हाथ के औजार हैं। अगर हम यह महसूस करें कि हमें अपने लिए काम नहीं करना है, एक काल-शक्ति हमसे वह करवा रही है तो हमें यथार्थ ज्ञान होगा। जैसे बाल-कृष्ण होता है, वैसे काल कृष्ण भी होता है। गीता में कहा है—"कालोस्मि लोकक्षय-कृत् प्रवृद्धः" अर्थात् लोकक्षय का काम करने के लिए मैं काल-रूप में प्रकट हुआ हूँ। यह दर्शन भयंकर और प्रलय ही मालूम होता है। करीब-करीब ऐसा ही दर्शन इस विज्ञान-युग में कालकृष्ण ने दिखाया है। इससे मानव का उच्छेद ही होगा, ऐसा आभास होने लगा है। इस तरह यद्यपि हमारे सामने संहाररूप प्रकट हुआ है, फिर भी संहारक रूप नहीं, एक बड़े अभयंकर रूप की प्रस्तावना है। आज दुनिया में जो भयंकर रूप प्रकट हो रहा है, वह आनेवाले कल्याणकारी युग की प्रस्तावना है। जैसे प्रसव-वेदना के बाद महान निर्मिति होती है, जिसका माताओं को अनुभव आया करता है, वैसी ही प्रसव-वेदना का अनुभव आज विश्व को हो रहा है।

आज छोटे-छोटे विचार टिक नहीं सकते

इस हालत में हमारे देश में और दूसरे भी देशों में छोटे-छोटे विचार लेकर जो पक्ष पड़े हैं, वे इस जमाने के लिए सर्वथा अननुरूप (आउट आफ डेट) हैं। वे पुराने युग के अवशेषमात्र हैं, जो टिक नहीं सकते। आज देखते-देखते लोकशाही का रूपांतर सैनिकशाही में हो रहा है। फ्रांस, मिस्र, ईरान, थाईलैंड, पाकिस्तान और कुछ हद तक बर्मा भी उसी रास्ते से जा रहा है। इसलिए इस जमाने में इसका रूपांतर किसमें होगा, इसका कुछ पता नहीं है। वस्तु एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत मालूम होती है, वह नजदीक आती है और एक वस्तु का रूपांतर दूसरी वस्तु में हो जाता है। लोकशाही का रूपान्तर सैनिकशाही में होते देर नहीं लगती है। यह हम सबके लिए सोचने की बात है।

आज लोकतंत्र और सैनिकतंत्र बिलकुल नजदीक

हम देख रहे हैं कि साम्यवाद का रूपान्तर पूंजीवाद में सहज हो सकता है। इसके लिए ज्यादा समय नहीं लगता। जो वस्तु प्रतिक्रियारूप में खड़ी होती है, उसका रूपान्तर मूल वस्तु में होने में देर नहीं लगती है। इसी तरह लोकशाही और सैनिकशाही बिलकुल नजदीक है। क्योंकि लोकशाही यह दावा करती है कि हम प्रतिनिधियों की मार्फत समाज का कल्याण करेंगे। समाज खुद ही अपना कल्याण करे, यह नहीं कहा जाता। इस तरह के कल्याण राज्य में सरकार के हाथ में बहुत सत्ता सौंपी जाती है, जिससे उसका दबदबा, प्रतिष्ठा, इज्जत रहे। हर कोई कहता है कि हमारे पक्ष को चुनकर दो तो हम सब कुछ सुधार देंगे, समाज को सुखी करेंगे, भेद मिटायेंगे। किन्तु जब उससे वह वचन पूरा नहीं होता तो लोग असन्तुष्ट होते हैं। फिर प्रजा कानूनों से त्रस्त भी होती है। इस हालत में लोगों को सुख

देने का वादा करके सेना अपने हाथ में सत्ता ले तो वह बिलकुल ही आसान है।

लोकतन्त्र अपनी बुनियाद उखाड़ रहा है

यह हिन्दुस्तान में होगा या नहीं होगा, इस बारे में मैं अभी चर्चा नहीं कर रहा हूँ। हिन्दुस्तान जैसी छोटी-सी चीज मेरे सामने नहीं है। मैं तो सारे विश्व की बात कर रहा हूँ कि जहाँ लोकतन्त्र में प्रजा को सुख देने का वादा करके हाथ में बहुत सारी सत्ता ली जाती है और बचाव के कारण सेना रखी जाती है, वहाँ लोकतन्त्र अपने ही हाथों से अपनी ही बुनियाद उखाड़ रहा है। अगर पूँजीवादी, साम्यवादी आदि सरकारों की सरकार हो, फैसिस्ट सरकार हो, लोकतन्त्र और गांधीवादी राज्य में भी बचाव का साधन सेना हो तो ये सारे एक ही पक्ष में आ जाते हैं। भले ही वे अलग-अलग पोशाक पहनें। इसलिए भारत में या दूसरे किसी देश में प्रजा को सरकार पर निर्भर बनाया जायगा तो चाहे जिस प्रकार की सरकार हो, वह खतरनाक ही होगी।

सरकार की सार्वभौम सत्ता ही खुराफात की जड़

इन दिनों सरकार के हाथ में परमेश्वर के जितनी ह सत्ता रहती है। शादी, संपत्ति के कानून, जमीन की मालकियत का मिटाना, समाज-सुधार आदि सारे काम सरकार के हाथ में ही होते हैं। सेना कितनी रखी जाय, इसका निर्णय भी वही करती है। ग्रामोद्योगों को उत्तेजन दिया जाय या मिल-उद्योगों को तालीम कैसी दी जाय, ये सारे निर्णय सरकार ही करती है और हम तदनुसार बरतते हैं। इस तरह आज प्रजा पाँच साल के लिए ही क्यों न हो, सरकार के आधीन हो जाती है। भले ही वह सरकार अकबर, पं० नेहरू या अन्य किसी दार्शनिक की या साक्षात् महाराज युधिष्ठिर की हो तो भी इतनी सार्वभौम सत्ता उसके हाथ में सौंपने और उसके बचाव के लिए सेना रखने का हक भी उसे देना बड़ा ही खतरनाक है। कहा जाता है कि इक्यावन प्रतिशत वोट द्वारा चुनी गयी सरकार बहुमत की सरकार होती है। लेकिन हम देख रहे हैं कि चालीस प्रतिशत की ही सरकार चुनी जाती है और वह सौ प्रतिशत लोगों पर सत्ता चलाती है। ऐसी सरकार के हाथ में सबपर सत्ता चलाने का अधिकार हम सौंपते हैं तो वह कैसे काम चलायेगी? फिर तो उसे सेना का ही आधार लेना पड़ेगा। इसीलिए आज सब राष्ट्रों में सेना का ही आधार लिया जा रहा है।

गांधी-विचार का तो कुछ ध्यान रखें

आज के इस विज्ञान-युग में, इस गांधी-युग में सोचना चाहिए कि हमें इस पद्धति में कुछ बदल करना चाहिए या नहीं? अगर नहीं करना है तो समझ लें कि गांधी-विचार आया और गया। उसकी कुछ भी चली नहीं। जब हम रक्षण-शक्ति के रूप में सेना को मान्यता दे देते हैं तो अद्यतन सेना रखनी पड़ती है, जिसके लिए आधुनिक शस्त्रास्त्रों की जरूरत होती है। फिर उसके लिए यन्त्रोद्योगों को भी प्रोत्साहन देना पड़ता है, क्योंकि उसीसे सेना के लिए आवश्यक सामग्री देश में पैदा हो सकती है। बाहर से सारी सामग्री मँगवाना महँगा पड़ता है। इसलिए एक योजना भी आ जाती है। फिर भले ही हम खादी-ग्रामोद्योग को घर के एक कोने में अतिथि के जैसा स्थान दें। किन्तु घर के मालिक का स्थान उसे नहीं मिल सकता है।

अहिंसा-शक्ति के निर्माण की बात सोचें

आज दुनिया में जहाँ-जहाँ लोकतंत्र चलता है, वहाँ भी लड़ाई या किसी विशेष प्रसंग में सेना की ही बात सोची जाती है। चाहे सरकार पूँजीवादी, साम्यवादी, लोकतांत्रिक या सैनिकशाही की हो। लड़ाई के मौके पर लोगों को यही आदेश दिया जाता है कि तुम सबको सेना में दाखिल होना होगा। फिर यह हुक्म भी निकल सकता है कि सब स्कूलों में मिलिटरी ट्रेनिंग दी जानी चाहिए। जो इससे इन्कार करता है, उसे देशद्रोही कहकर जेल भी भेजा जाता है। इतनी सारी सत्ता हमने लोकशाही में भी सरकार के हाथ में सौंपी है। जबतक यह चलेगा, तबकत आज के इस विज्ञानयुग में काम करनेवाली शक्तियों और विचार-प्रवाहों का विरोध होता रहेगा। विज्ञानयुग के ये प्रवाह संकुचित राष्ट्रीयता, आदि सारे संकुचित विचारो के सर्वथा विरुद्ध हैं। इसलिए दुनिया के प्रवाह को ध्यान में लेकर व्यापक विचार कर हमें सोचना चाहिए कि किस तरह अहिंसा-शक्ति पैदा हो। इसके लिए विश्व-शक्ति अनुकूल है, यह मैं स्पष्ट देख रहा हूँ।

क्या बूढ़ों को घुमानेवाला जवानों को बिठा रखेगा?

आज हम लोग शान्ति-सेना के बारे में बात कर रहे थे तो एक भाई ने कहा: "आप बड़ोदा जिले से दो सौ शांति-सैनिकों की माँग करते हैं। किन्तु आज एक तहसील के लिए एक-एक भी अच्छा व्यक्ति मिल जाय जो पूरा समय दे तो उसे भी भगवान का उपकार ही मानना होगा।" इसपर मैंने कहा कि ऊपर से देखने पर ऐसा ही लगता है। व्यक्त में यह सारा ऐसा ही दीखता है। किन्तु जो अव्यक्त शक्ति काम कर रही है, उसका हम भान रखें तो ध्यान में आयेगा कि ये शक्तियाँ मनुष्य को प्रेरणा दे रही हैं। इसलिए मेरा विश्वास है कि बड़ोदा से मैं २५० शांति-सैनिकों की आशा करता हूँ तो मुझे पाँच सौ मिलेंगे। अगर मैं पाँच सौ की आशा करता तो मुझे हजार सैनिक मिलते। यों आशा तो अपनी शक्ति के अनुसार की जाती है, पर यदि परमेश्वर की शक्ति को ध्यान में लेकर आशा की जाय तो काम सफल हो होगा। विश्वास रखिये कि जो मेरे जैसे वृद्ध पुरुष को निरंतर घूमने की प्रेरणा दे रहा है, क्या वह जवानों को हाथ पर हाथ धरे बिठा रखेगा? रविशंकर महाराज ७५ साल की उम्र में हाथ में लाठी लेकर १५ मील चलते हैं तो यह प्रेरणा उनकी खुद की नहीं है। इसलिए यह समझना चाहिए कि आज जवान तड़प रहे हैं। वे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कोई हमें मार्ग दिखाये कि हम किस तरह सर्वस्व त्याग करें।

अव्यक्त ही नहीं, व्यक्त भी दर्शन

इस बात को मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ। केवल अव्यक्त में ही नहीं, व्यक्त में भी देख रहा हूँ कि ऐसे मनुष्य इस काम में आ रहे हैं। शान्ति-सेना का संदेश देश के सैंतीस करोड़ लोगों में से साक्षात् कितने लोगों के पास पहुँचाना होगा? अभी तो हम देश के एक कोने में ही काम कर रहे हैं। प्रजा जानती ही नहीं है कि शांतिसेना क्या चीज है। इस हालत में भी एक-एक मनुष्य मेरे पास आकर कहता है कि मैं शांतिसैनिक बनना चाहता हूँ। अब तक सारे हिन्दुस्तान में ढाई सौ शांति-सैनिक मिले हैं।

शांतिसैनिकों के लिए क्षेत्रीय प्रयत्न ही पर्याप्त

आप कहेंगे कि जब सारे हिन्दुस्तान से ढाई सौ सैनिक मिले तो आप बड़ोदा से ढाई सौ की आशा कैसे करते हैं? किन्तु

ऐसी बात नहीं। एक-एक छोटे-से क्षेत्र में काम करने से ही ज्यादा सैनिक मिलेंगे। हमारा प्रचार का साधन क्या होगा? मान लीजिये, मैं सारे हिन्दुस्तान में प्रचार करना चाहूँ और हवाई जहाज से देहली, कलकत्ता, आगरा आदि दस-पाँच शहरों में घूमता जाऊँ तो पन्द्रह दिनों में सारे हिन्दुस्तान का चक्कर लगा सकता हूँ। फिर शहरवाले मेरा भाषण सुनेंगे और उसपर चर्चा करेंगे। अखबारों में भी वह छपेगा। लेकिन क्या अखबारों से हमें शान्ति-सैनिक मिलेंगे? रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि पंचांग में बारिश के बारे में भविष्य आता है, लेकिन सारा पंचांग निचोड़ा जाय तो एक बूँद भी पानी नहीं टपकेगा। इसी तरह अखबारों की दुनिया में घूम-घूमकर शान्तिसैनिक नहीं बनेंगे। वहाँ तो 'अर्चा' का काम है, चर्चा का नहीं। इसलिए हमें गाँव-गाँव जाकर सन्देश पहुँचाना पड़ेगा। अब हमें हर गाँव से शांति-सैनिक मिलेंगे और फिर जब शहरवाले देखेंगे कि गाँव के लोग एक-दूसरे पर प्यार करते हैं, तब वे भी इसमें शामिल होंगे, केवल अखिल भारत में प्रचार करनेमात्र से शांति-सैनिक मिलेंगे। जिसे अमुक एक स्थान में एकाग्र प्रयत्न करना हैं, वह उसे अवश्य करे।

जागतिक नेता तब और अब

शिवाजी महाराज ने स्वराज्य प्राप्त किया तो उसके लिए कोई अखिल भारतीय समिति नहीं बनायी थी। वे एक-एक किला हासिल करते गये। अखिल भारतीय नेता बनते-बनते तो उनकी जिन्दगी ही खत्म हुई। फिर भी वे अखिल भारतीय नेता नहीं बने, प्रान्तीय ही रहे। किन्तुआज कल अखिल भारतीय ही क्या, कोई भी आसानी से अखिल जागतिक नेता बन जाता है। हवाई जहाज से दुनियाभर में घूम ले तो बस, वह अखिल जागतिक नेता बन गया।

आपको पुराने जमाने के अखिल जागतिक नेताओं की बात क्या बताऊँ? बुद्ध भगवान बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में पैंतालीस साल तक सतत घूमते रहे। ईसा मसीह तो पिलेस्तान के बाहर भी नहीं गया। फिर भी उसने जो कार्य किया, वह इतना ऊँचा था कि सारे विश्व में फैल गया। आप देख ही रहे हैं कि आज दुनिया में सौ करोड़ से ज्यादा व्यक्ति ईसाई हैं, जो ईसा के नाम से पाबन्द होते हैं।

कल्पना जागतिक, कार्य अपने-अपने स्थान पर

इसी तरह हम कल्पना तो जागतिक करें, किन्तु कार्य अपने-अपने स्थान में ही करें। क्रान्तियाँ फुरसत से नहीं होतीं, उनके लिए तो सर्वस्व देना पड़ता है। दूसरों से कुछ मदद अवश्य मिलती है, किन्तु इसके मूल-पुरुष ऐसे ही हों, जो जीवन-सर्वस्व लगा दें।

विश्वशक्ति पर विश्वास रखिये

बड़ोदा में ऐसे २५० मनुष्यों की माँग कठिन नहीं है। जो भी मनुष्य मिले, उसपर प्रेम करना है। दोष तो हरएक में पड़े हैं, फिर भी हमें जो व्यक्ति मिलते हैं और जो शांति-सैनिक की प्रतिज्ञा कर हमारे पास आते हैं, उनपर हमें अत्यन्त विश्वास रखना चाहिए और तालीम देकर उनको काम देना चाहिए। माँ अपने बालक पर विश्वास रखती है और सोचती है कि मेरा बच्चा अच्छा ही निकलेगा! हमे भी सबपर ऐसी ही श्रद्धा रखनी चाहिए। श्रद्धा के बिना हम उन सबको जगा न सकेंगे, इसलिए आज भूदान में काम करनेवाले हर कार्यकर्ता पर बहुत विश्वास रखें। विश्वासपूर्वक ही हम एक-दूसरे के हृदय में प्रवेश करें। तो फिर दोषों का निराकरण भी हो जायगा। अतः आप विश्व-शक्ति पर विश्वास रखिये तो फिर आपको विश्व-शक्ति का अनुभव भी आयेगा। परमेश्वर पर श्रद्धा रखें तो निश्चय ही यह अनुभव आयेगा कि बड़ोदा जिले में यह कार्य होकर रहेगा। ●

शान्तिसेना-समिति के सदस्यों में

रणोली (बड़ोदा) ३०-१०-'५८

निष्ठापत्र की निष्ठाओं का स्पष्टीकरण

[रणोली (बड़ोदा) में पू० बाबा के समक्ष शान्तिसेना-समिति के सदस्यों ने शान्तिसैनिकों के निष्ठापत्र की निष्ठाओं के बारे में कुछ शंकाएँ रखीं। पू० बाबा ने उनका समाधान करते हुए जो स्पष्टीकरण किया, उसे उन शंकाओं के साथ नीचे दिया जा रहा है।—संपादक]

हम अपने अधीन सभी वस्तुओं के ट्रस्टी

शंका :—क्या "अपरिग्रह" का अर्थ सर्वस्व-समर्पण, निजी मालकियत का पूर्ण विसर्जन करना चाहिए।

समाधान :—जिसे गांधीजी "ट्रस्टीशिप" कहते थे, उसके अनुसार अपने पास जो भी हो, उसके हम ट्रस्टी हैं, ऐसा खयाल रहे। हमारे पास बाह्य परिग्रह कितना है, इसमें मैं नहीं पड़ता। वह सब कोई अपना-अपना देख ले। अगर ज्यादा है तो उसे कम करे। उसके विकास के लिए वह क्षेत्र खुला है। वह अपरिग्रह को मानता है और नाहक का परिग्रह नहीं करता। इसलिए जो कुछ है, सब छोड़ देना चाहिए, ऐसी बात नहीं। अगर किसीके पास जमीन है तो वह छठा हिस्सा दे और ग्रामदान के समय अपनी कुल जमीन देने की तैयारी रखे। बाकी उसके पास जो चीजें हैं, उनका ट्रस्टी बनकर रहे। अपनी आवश्यकताएँ कम करता चला जाय। इससे ज्यादा मैं उससे अपेक्षा नहीं करूँगा। अपरिग्रह के लिए कोई बाह्य नाप नहीं है। मैं तो मानता हूँ कि कोई बहुत बड़े वैभव में रहकर भी अपरिग्रही हो सकता है और कोई दारिद्र्य में रहते हुए भी परिग्रही हो सकता है। इसलिए इसका कोई बाह्य माप नहीं होगा, हरकोई अन्दर से सोचे।

विषय, दोष और राजनीति के चिन्तन से बचें

शंका :—"चिन्तन-सर्वस्व" के बारे में कितने ही लोगों को लगता है कि उसे गम्भीरता से उठा लें तो वह इतना गहरा हो जाता है कि उसे स्वीकार ही नहीं कर सकते।

समाधान :—चिन्तन-सर्वस्व के बारे में कइयों ने जो सोचा है, वह सही है। शान्ति-सैनिक जो कार्य करता है, वह इतना गहरा और व्यापक है कि उससे उसे सन्तोष और आनन्द पूरा मिल सकता है। इसलिए फिर सन्तोष और आनन्द के

लिए उसे कुछ दूसरा सोचना नहीं पड़ेगा। हजारों परिवार के साथ उसका सम्बन्ध रहेगा। उसके कारण हृदय के सन्तोष के लिए उसे दूसरी चीजों की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं रहेगी। अपने चित्त-विकास की दृष्टि से वह कुछ आध्यात्मिक चिन्तन-मनन करने की जरूरत समझे और उसके लिए समय दे तो उसके लिए चिन्तन-सर्वस्व में बाधा नहीं आती।

चिन्तन-सर्वस्व में न आनेवाली जिन तीन बातों का मैंने जिक्र किया था, वे इस प्रकार हैं :—१. विषय-चिन्तन न हो, २. दूसरों के दोष देखने में और निन्दा में समय न बिगाड़ा जाय और ३. राजनीति का व्यर्थ चिन्तन न किया जाय। इन्द्रियाँ और मन विषयग्रस्त न हो। साधारणतया सैनिक संयमी हो, इसका ध्यान रहे। इसलिए चिन्तन-सर्वस्व का विचार बहुत कठिन नहीं है। शान्ति-सैनिक का हृदय ही कहेगा कि मैं इस काम में रमा हूँ। आप आशादेवी की मिसाल लीजिये। तीस साल से वह तन्मयता से नयी तालीम के काम में लगी है। इस तरह जिसे कोई व्यापक कार्य मिल जाता है, उसे उसीमें आनन्द का अनुभव होता है। इसलिए वह दूसरा चिन्तन नहीं करता। रविशंकर महाराज की मिसाल लीजिये। आज उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं है। इसलिए चिन्तम-सर्वस्व का हम बहुत ज्यादा गंभीर अर्थ कर अगर कहें कि सैनिक को बुद्ध भगवान जैसे समाधिस्थ होना चाहिए, ऐसी बात नहीं। वह लोगों के साथ सम्पर्क रखे, ग्राम में जाय, सबसे बातचीत करे, स्वच्छता की बात करे, संगीत सुनाये और बीमार की सेवा करे। इस तरह उसे तरह-तरह के विषयों पर सोचने को मिलेगा। उसपर जीवन का व्यापक स्पर्श होगा, वह एकांगी नहीं रहेगा।

दैनिक जीवन में कमांडर का निर्देश अनावश्यक

शंका :—हम सैनिक अशान्ति के मौके पर कमांडर के आज्ञाधारी रहें या अपने दैनिक जीवन के कार्यक्रम में भी उसका मार्गदर्शन लें?

समाधान :—आपने कमांडर के मार्गदर्शन की बात पूछी, लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि सैनिक को मार्गदर्शन मुश्किल से ही मिलेगा। इस आंदोलन में वही सैनिक होगा और वही सेनापति। किन्तु किसी स्थान में सबको एक साथ भेजने की जरूरत हो तो भेजा जायगा। इसके अलावा उसके रोज के काम में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, शरीर-परिश्रम आदि के लिए उसे पर्याप्त मार्गदर्शन मिला ही है, इसलिए वह अपना काम कर सकता है।

शान्ति देना ही कर्तव्य, लोगों के काम में दखल देना नहीं

हम इतना ही चाहेंगे कि वह सामाजिक, राजनैतिक आदि प्रश्नों में पड़कर उलझनों में न फँसे। समाज के सब प्रश्न हल करना शान्ति-सैनिक का काम नहीं। उसका काम इतना ही है कि शारीरिक दुःखों में लोगों को मदद पहुँचाये और मानसिक दुःखों में भी मदद पहुँचाने की कोशिश करे। बाकी वह भूदान, ग्रामदान आदि का विचार लोगों को समझाता रहे। साहित्य का प्रचार करता रहे। जगह-जगह जो मसले पैदा होते हैं, उन्हें हाथ में लेना शान्ति-सैनिक के कर्तव्य में नहीं आता। मान लीजिये, यहाँ द्विभाषिक का मसला है। अब शान्ति-सैनिक उसमें पड़ेगा तो अपने को खो देगा। कहीं मालिक और मजदूर के झगड़े होते हैं। उनके दावे कहाँ तक सही या गलत हैं, इसमें वह पड़ेगा तो खो जायगा। मालिक और मजदूरों के बीच अशान्ति न हो, परस्पर प्रेम-भाव रहे, इतनी ही कोशिश इसकी होनी चाहिए। इससे ज्यादा मालिक-मजदूर के झगड़े खत्म करने की उसकी इच्छा हो तो सेना के मुख्य मनुष्य को पूछे बगैर वह अगर उन्हें हाथ में लेगा तो तकलीफ में पड़ेगा और शान्ति-सेना के काम में भी बाधा आयेगी।

शान्ति-सैनिक लोगों के कार्य में दखल देनेवाला नहीं, बल्कि शान्ति देनेवाला है। इसलिए वह भूदान, ग्रामदान का ही विचार रखता जाय। वह ऐसा कोई कार्य न करे, जो उसकी शक्ति के बाहर का हो। दुनिया में अशान्ति के कारण मौजूद रहते हुए भी शान्ति-सैनिक बीच में खड़ा हो और अशान्ति को अपने ऊपर ले। शान्ति-सैनिक के काम में एक बड़ी मर्यादा है। उसे अन्याय-प्रतीकार का कोई आन्दोलन उठाना हो तो सर्व-सेवा-संघ की सलाह से ही उठाना चाहिए। जिससे उसके काम के साथ एक ताकत जुड़ जायगी। अन्यथा अगर वह लोगों के काम में बीच-बीच में दखल देता रहेगा तो अशान्ति ही पैदा करेगा। फिर लोग न समझेंगे कि वह निष्पक्ष है। इसलिए वह शान्ति के काम में नहीं आ सकेगा।

उत्पादक या अनुत्पादक शरीर-श्रम अवश्य रहे

शंका:—"अपरिग्रह" के बाद "शरीर-श्रम" भी जोड़ा जाय, यह विचार शिविर में आया है। इस सम्बन्ध में क्या निर्देश है?

समाधान:—सत्य, अहिंसा आदि व्रतों के साथ शरीर-श्रम अवश्य जोड़ा जाय। मैं नहीं चाहता कि एक भिक्षु-संघ खड़ा कर दिया जाय। हम उससे बचना चाहते हैं। इसीलिए शरीर-परिश्रम के मूल सिद्धान्त को इसमें रखते हैं। किन्तु वह परिश्रम उत्पादक ही हो, ऐसा आग्रह नहीं रखा जा सकता। बीमार की सेवा उत्पादक नहीं कही जायगी, इसलिए सैनिक शरीर से कुछ सेवा करें, इतना ही हम चाहेंगे। वैसे सफाई में भी साक्षात् उत्पादन नहीं होता, यद्यपि बाद में उससे उत्पादन में मदद मिलती है। हम सफाई को भी शरीर-परिश्रम मानें। शान्ति-सैनिक कहीं भी जाय तो किसी खेत में जाकर किसान को मदद पहुँचाये। वह सूत-कताई कर अपना सूत समाज को अर्पण करे। मैं उसपर कोई बन्धन नहीं डालना चाहता। इतना ही चाहता हूँ कि उसके दैनिक जीवन में शरीर-श्रम को स्थान रहे।

सैनिक सर्वथा मुक्त और पूरा समय देनेवाला ही हो

शंका:—क्या शान्ति-सैनिक पुरा समय देनेवाला हो? किसान, बुनकर या दूसरा कोई उत्पादक कार्य करनेवाला यदि निष्ठापत्र पर दस्तखत करे और अशांति के मौके पर कमांडर की आज्ञा के अनुसार अपना काम छोड़कर आने की तैयारी रखे तो क्या वह शांति-सैनिक नहीं बन सकता? कुछ लोगों का खयाल है कि सेवा और शांति का काम समय पर नहीं, आन्तरिक करुणा पर आधारित है।

समाधान: – मेरा खयाल है कि किसान और बुनकर आदि उत्पादक परिश्रम कर जीवन जीता है तो बहुत पवित्र काम करता है। अगर वह मौके पर शांति का काम करने के लिए तैयार है तो उसे शांति-सहायक माना जाय। ऐसे सहायक हमें लाखों चाहिए। किन्तु शांति-सैनिक अपने खेत में श्रम कर पैदा करे और वही खाये तो उसमें उसका काफी समय जायगा। इसलिए वह तो पूरा समय देनेवाला ही हो, तभी हमारा उद्देश्य सफल होगा। नहीं तो आज बहुत सारे रचनात्मक कार्यकर्ता अच्छा काम करते ही हैं, उनको भी शांति-सेना में भरती किया जा सकता है। फिर तो नाममात्र की शांति-सेना बनेगी। मैं उसे पसंद नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि सैनिक मुक्त ही रहें।

किसीने सवाल उठाया कि क्या हमें शांति-सैनिक अधिकतर मध्यम वर्ग से ही मिलेंगे ? मैं इसे नहीं मानता, बल्कि यही मानता हूँ कि श्रमनिष्ठों में से ही अधिकतर सैनिक मिलेंगे। वे गाँव में रहते हैं, गाँव की सेवा में वे ही टिकेंगे। किसान शरीर-परिश्रम जरूर करते हैं, परन्तु उनका अपना एक धंधा हो और उसी कमाई से खाते हों तो उनका पूरा समय नहीं मिलेगा। आज किसान की हालत ऐसी है कि कहीं बारीश न हुई तो उसे कर्जा लेना पड़ता है। इसलिए सैनिक फिर उसमें फँस जायगा। मैं तो चाहूँगा कि गाँव का ही मनुष्य जो शान्ति-सैनिक बने, सर्वोदय-पात्र पर निर्भर रहे और किसीके भी खेत में जाकर काम करे। इस तरह वह मुक्त रहेगा। इसलिए हमें यह डर नहीं रखना चाहिए कि शान्ति-सेना मध्यम वर्ग का ही एक संगठन बनेगा। इसमें तो सब वर्गों के लोग आयेंगे।

आज विशिष्टों से मदद की थोड़ी छूट

शंका:—क्या सभी सैनिकों को अपने योगक्षेम के लिए सर्वोदय-पात्र का ही आधार लेना चाहिए ?

समाधान:—मैं मानता हूँ कि शान्ति-सैनिक का योगक्षेम भगवान पर ही सौंपना चाहिए। मैंने दो वाक्य कहे थे, जो बड़े विचित्र मालूम होंगे। (१) शरीर-परिश्रम किये बिना खाना पाप है। इसका मतलब यह है कि उसे शरीर-श्रम करना चाहिए और अपना सब कुछ समाज को समर्पण करना चाहिए। फिर समाज से जो प्रसाद मिले, वही खाना चाहिए। गीता में कहा है कि जो अपने लिए रसोई करके खाता है, वह पाप खाता है। मैंने छह घंटे काम किया, बारह आना कमाया और उतना ही खाया तो वह पुण्य-कार्य नहीं। होना तो यह चाहिए कि मैंने बारह आने कमाये और समाज को अर्पण कर दिये। फिर समाज की तरफ से मुझे मेरी आवश्यकता के अनुसार जो भी मिले (चार आना हो, आठ आना हो या चौदह आना), वह मैं खाऊँ। अगर मैं अपना योगक्षेम स्वयं करूँगा तो उसका अर्थ यह होगा कि आज की अर्थ-व्यवस्था मैंने मान ली। आज अमुक काम में कितनी मजदूरी मिलती है, यह देखकर मैं काम करूँ तो उसका अर्थ यह हुआ कि आज के बाजार-भावों को मैंने मान लिया। लेकिन हम तो उन्हें तोड़ना चाहते हैं। एक भाई ने कहा कि मैं उपनिषद् का अध्ययन करना चाहता हूँ, इसलिए मुझे ऐसा धंधा बताओ, जिसमें दो घंटे काम कर मैं पूरी रोजी कमा सकूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि जिसमें ज्यादा पैसा मिले, ऐसा कोई लूटने का धंधा ही वह कर सके। यह कोई पुण्य कार्य नहीं हुआ। इसलिए हमें योगक्षेम की जिम्मेवारी अपने पर नहीं लेनी चाहिए, भगवान पर ही सौंपनी चाहिए। अपने ऊपर तो समाज-सेवा की ही जिम्मेवारी रहे। हम जो भी कमायें, समाज को समर्पण करें।

फिर भी आज ही सारी मुश्किलें खड़ी कर मैं शान्ति-सेना को कुंठित करना नहीं चाहता हूँ। इसलिए आज वे किन्हीं विशिष्ट मनुष्यों से मदद लेते हैं तो मैं उन्हें नहीं रोकूँगा, किन्तु वे विशिष्ट मनुष्य पूर्ण पवित्र और अभिमान रहित हों, तभी उनसे मदद लेनी चाहिए। अच्छा तो यही होगा कि हम सर्व-सामान्य जनता पर निर्भर रहें। मान लीजिये, मेरा भाई मेरे लिए खर्चा करता है तो आगे चलकर हम उससे कहें कि आप मुझ पर खर्चा न करते हुए संपत्ति-दान दीजिये। इस तरह आगे चलकर हमें सर्वोदय-पात्र पर ही निर्भर रहना है। पहले हमने केन्द्रीय निधि छोड़ दी, फिर संपत्ति-दान का आधार भी छोड़ दिया। आगे चलकर सभी मित्रों का आधार भी छोड़ना है। फिरभी आज मैं ऐसा बन्धन डालना नहीं चाहता, इसलिए आज इस विषय को खुला ही रखना चाहता हूँ।

मान्यता के लिये प्रशिक्षण आवश्यक

शंका:-संगठन का रूप क्या हो ? निष्ठापत्र किसके पास भेजा जाय ? सैनिकों को स्वीकृति किसके जरिये मिलेगी ?

समाधान:-सैनिक के निष्ठापत्र को सम्मति देने का काम 'सर्व-सेवा-संघ' या उसकी ओर से नियुक्त समिति करे। हर निष्ठापत्र की एक नकल मेरे पास और दूसरी सर्व-सेवा-संघ के पास भेजी जाय। जो अपनी इच्छा से शान्ति-सैनिक हुआ है, उसे हम तो सैनिक ही मानेंगे, फिर भी उसे तालीम देंगे, जिसमें उसकी स्वाभाविक परख होगी। उसके बाद हम उसे कायम करेंगे। वैसे लोगों में तो पहले से ही जाहिर हो जाता है कि अमुक शांति-सैनिक बना। वह खराब चीज नहीं, उससे मनुष्य को प्रेरणा ही मिलती है, किन्तु किसी व्यक्ति को शांति-सैनिक के नाते हम मान्यता तभी देंगे, जब उसे एक-दो महीने शिक्षण देकर उसकी परख हो जायगी। हम शिक्षण के बाद उसे पास ही करेंगे।

हमारे पास जो सैनिक आते हैं, उनमें से किसीको फेल करने का मौका आये तो उसका मतलब होगा हम ही फेल हो गये। नयी तालीम का यह विचार है कि परीक्षा तो हमारी होती है, इसलिए जो शांति-सैनिक बना और शिविर में आया, उसे हमें पास ही करना चाहिए, उसे फेल करने का मौका आना, हमारे लिए ठीक नहीं। अगर किसीको अधिक शिक्षण देने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो हम उसे आश्रम में रखेंगे।

किसीको यह भी खतरा मालूम होता है कि इसमें रोजी चाहनेवाले भी आ जायँगे। किन्तु माँ को एक निकम्मा लड़का हो तो वह भी उसे निकम्मा कहकर त्याग नहीं देती, बल्कि अच्छा बनाती है। इसलिए हमारे पास जो भी आये, उसे तालीम और काम देकर हमें अच्छा बनाना है। अगर वह काम के योग्य न मालूम पड़े तो उसे बाहर किसी काम में न भेजा जाय। ऐसे किसी काम में लगाया जाय, जिससे उसका विकास हो। हम यह समझें कि आज नहीं तो कल वह अवश्य योग्य बनेगा। इस तरह सोचकर हमारे पास जो भी आयें, उनका हमें संग्रह करना चाहिए।

कमाण्डर का रूप परिवार के बड़े-बूढे जैसा ही

शंका:—क्या जिला और प्रान्त के लिए भी कमाण्डर रहेंगे ? उनकी जिम्मेवारी क्या होगी ?

समाधान:—हम मनुष्यों को देखे बगैर प्रान्त या जिले में शांति-सेना-समिति कायम न करेंगे। लेकिन हमें मालूम हो कि अमुक जिले में बबलभाई काम करते हैं तो उस जिले के लिए उनका नाम लिया जायगा। जिस जिले में ऐसा कोई मनुष्य न मिले, वहाँ हम कोई संगठन खड़ा नहीं करेंगे। जैसे हर जिले में कांग्रेस-कमेटी होती ही है, वैसा हमारा संगठन न रहेगा। लेकिन जहाँ कोई मनुष्य मिल जाय, वहाँ हम उसका नाम लेंगे। उसे "कमाण्डर" नहीं कहेंगे, वह तो "निवेदक" जैसा ही होगा। अभी अहमदाबाद में चन्द्रवदन लश्करी ने काम किया। मेरा खयाल है कि परमेश्वर को वह काम बहुत प्रिय हुआ होगा। हमने उसे कमाण्डर तो नहीं बनाया था, परन्तु काम करते-करते वह आगे बढ़ा। सेना में जैसा कठोर संगठन होता है, वैसा हम बिलकुल नहीं चाहते। किन्तु हम ढीलाढाला संगठन भी नहीं चाहते। मैं तो असंगठन के ही पक्ष में हूँ। हम यही चाहते हैं कि हमें मालूम हो

कि अमुक जिले में कौन आदमी काम करता है। खानदेश में दामोदर है तो स्वाभाविक तौर पर मन में रहता है कि वह वहाँ है। जैसे कुटुम्ब में जो बड़ा मनुष्य होता है, उसकी सलाह ली जाती है। वैसे ही होगा। इसमें 'कमाण्डर' बनाने की कोई बात नहीं।

अखिल भारतीय समिति के संगठन का विचार

फिर भी मेरे मन में एक विचार आया है कि मैं एक अखिल भारतीय शांति-सेना जाहिर करूँ, जिसमें बीस-पचीस मनुष्यों के नाम हों। इससे भारत में एक श्रद्धा पैदा होगी कि एक साल से शांति-सेना की चर्चा तो चल रही थी, पर अब उसकी स्थापना भी हो गयी है। फिर कहीं भी झगड़े हुए तो शांति-सेना की तरफ से कोई वहाँ जाकर तहकीकात करेंगे, जिससे हमारे पास भी ठीक रिपोर्ट आयेगी। आज केरल में जो चल रहा है, उसके बारे में काफी परस्परविरोधी समाचार हमारे पास आते हैं, जिससे यह समझना मुश्किल हो जाता है कि वास्तव में चीज क्या है। वह समिति ऐसी ही घटनओं की तहकीकात करेगी। उसमें बीस-पचीस नाम काफी हो जायँगे, अगर वे विश्वसनीय व्यक्ति हों।

अपने काम की रिपोर्ट भेजना अत्यावश्यक

एक बात निश्चित है कि जो भी जहाँ काम करते हों, उन्हें वहाँके काम की जानकारी हमारे पास भेजनी चाहिए। कोई चाहे तो दूसरों से लिखवाये, फिर भी ठीक जानकारी प्राप्त करनी होगी। इसे अगर आप संगठन मानें तो भी वह काम करना ही होगा, इसके अलावा कुछ ऐसे निरीक्षक हों, जो मोर्चे पर आकर देखें कि सैनिक काम कैसा करते हैं। अभी उत्तर-प्रदेश में ब्रह्मदेव वाजपेई ने अच्छा काम किया। वहाँ पार्टियों के झगड़े चल रहे थे। उसमें बीच-बचाव करने की उन्होंने कोशिश की। उसका अच्छा असर रहा, किन्तु मुझे भी उसकी जानकारी नहीं थी। अभी जब वे मुझसे मिले, तब जिक्र चला। वैसे उत्तर-प्रदेश के अखबारों में तो उसका जिक्र आया था, लेकिन हमारे अखबार में नहीं। इसलिए हमारा एक ऐसा गजट हो, जिसमें अच्छी तरह से सारी जानकारी आये। शान्ति-समाचार (पीस न्यूज) जैसा वह हो सकता है, जिनमें सब बातों का जिक्र हो। ये छोटी-छोटी बातें नहीं हैं। जहाँ समाज में सर्वत्र अशांति है, वहाँ हमारे आदमियों ने शांति की सफल कोशिश की या कोशिश करके सफल नहीं रहे तो भी वह बड़ी बात है। इसकी जानकारी सबको होनी ही चाहिए।

सर्वोदय-पात्र : एक कर्तव्य

शंका :—शान्ति-सैनिक सर्वोदय-पात्र का कार्य तथा उसका इन्तजाम, जिला निवेदक और सर्व-सेवा-संघ आदि का सम्बन्ध क्या रहेगा ? शिविरार्थियों का खयाल रहा कि सैनिक को पात्र के संगठन के कार्य में तथा अनाज-संग्रह के कार्य में फँसकर नहीं रहना चाहिए। वह कार्य स्थानिक लोगों के जरिये होना चाहिए।

समाधान :—सर्वोदय-पात्र का काम बहुत बड़ा काम है। मैंने तो उसे एक अशक्य कार्य समझकर उठाया है, इसलिए मुझे उसमें उत्साह है। शान्ति-सैनिक को ही वह काम करना चाहिए। किंतु शान्ति-सैनिक अकेला वह काम नहीं करेगा, बल्कि उस-उस स्थान की शक्ति खड़ी करेगा। अनाज इकट्ठा करने की योजना उस-उस स्थान के लोगों से करानी चाहिए, जिसमें शान्ति-सैनिक भी योग दे। वह खुद ही सब काम करे, यह ठीक नहीं और तटस्थ रहे, यह भी ठीक नहीं। उसे काम करवाना होगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से सारी योजना हो। जो अनाज इकट्ठा हो, उसका छठा हिस्सा सर्व-सेवा-संघ के लिए भेजा जाय और बाकी जिनके लिए खर्च हो, उन्हें सर्व-सेवा-संघ मान्य करे कि ये हमारे व्यक्ति हैं। जैसे मोमिनाबाद में एक शाला ने काम किया है तो सर्व-सेवा-संघ की ओर से उस संस्था को कहा जायगा कि वह संस्था अनाज इकट्ठा करने की जिम्मेवारी ले। इस तरह जहाँ जो संस्था या व्यक्ति काम करते हों, उन्हें सर्व-सेवा-संघ मान्य करेगा। उस-उस स्थान का अनाज वहीं खर्च हो, ऐसी बात नहीं। उसके लिए हम एक जिला ईकाई या घटक मान सकते हैं।

कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के बारे में

शंका:—अजमेर-सम्मेलन के पहले एक अखिल भारतीय शांति-सेना-शिविर विनोबाजी के पास हो, ऐसी शिविरार्थियों की राय है। तबतक सैनिक अपने कार्य पर ही जोर दें। शांति-सेना की स्थापना की भी घोषणा हो जाय। हर प्रान्त में छोटे-छोटे शिविर हों। समन्वयाश्रम, सेवाग्राम, और बेंगलोर में रिजनल प्रशिक्षण शिविर चलें। ये लंबे अरसे तक चल सकते हैं। वहाँ स्थायी रूप से संस्थाए रहें, या जरूरत महसूस होने पर शिविरों का इन्तजाम किया जाय ?

समाधान:—अब समय आ गया है कि अजमेर-सम्मेलन तक शांति-सेना की एक योजना जाहिर की जाय। जगह-जगह छोटे-छोटे शिक्षण-शिविर हों। कार्यकर्ताओं को निश्चित काम सौंपा जाय। फिलहाल सर्वोदय-पात्र की योजना का काम उन्हें करना होगा। वह बुनियादी कार्यक्रम है। अहिंसा के लिए हम कितने लोगों की सम्मति हासिल कर सकते हैं, यह देखना है। सब लोगों के पास पहुँचकर सम्मति हासिल करना बहुत बड़ा कार्य है।

प्रशिक्षण-केन्द्र के लिए आपने जो नाम सुझाये हैं, वे ठीक हैं, परन्तु अभी तक इस प्रकार के प्रशिक्षण-केन्द्रों की योजना हम एक भी जगह नहीं कर पाये। जहाँ चार-छह महीने का प्रशिक्षण देना है, वहाँ कुछ शरीर-परिश्रम भी हो। कुछ लोगों के लिए लम्बा प्रशिक्षण एकआध साल का जरूरी है। जो सारी समस्याओं पर विशेष आध्यात्मिक दृष्टि से अध्ययन करना चाहें, वे एक स्थान पर एकआध साल के लिए इकट्ठा हों, यह अच्छा है। शांति-सेना में कुछ कच्चे लोग आयेंगे तो उन्हें प्रशिक्षण देकर काम में भेजने के लिए लम्बी ट्रेनिंग की आवश्यकता होगी।

[चालू]

अनुक्रम

१. कार्यकर्ताओं के लिए...	आदिपुर	३० नवम्बर '५८	पृष्ठ ८७३
२. हम नारद से सर्वगामी बनें.	ओखाड़ा	२२ अक्तूबर '५८	„ ८७४
३. अहिंसा के विचार के लिए...	बड़ोदा	२९ अक्तूबर '५८	„ ८७५
४. पत्रकार जीर्णवाद छोड़...	रणोली	३० अक्तूबर '५८	„ ८७८
५. आज विश्वशक्ति अहिंसा...	रणोली	३० अक्तूबर '५८	„ ८७९
६. निष्ठापत्र की निष्ठाओं...	रणोली	३० अक्तूबर '५८	„ ८८१

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा', वाराणसी।